IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

पूर्व मध्यकाल में जल संसाधन एवं सिंचाई के विविध प्रकार

शैलेन्द्र सिंह यादव (शोधार्थी)

ने0ग्रा0भा0वि0वि0 प्रयागराज

जल–संसाधन एवं सिंचाई

वर्षा नदी एवं मनुष्यकृत प्रयास ये तीनों ही जल के स्रोत रहे हैं। विकास के क्रम में प्रथम दो वर्षा एवं नदी आदिकाल से ही मानव, पशु एवं वनस्पतियों के जीवन के आधार बनते रहे हैं। मनुष्यकृत जल–संसाधन का विकास अपेक्षाकृत बाद में हुआ। अमरकोष भूमि वर्ग में अन्नोत्पादन के प्रथम दो स्रोतों का उल्लेख नदी मातृक एवं देव मातृक शब्द–बंध के नाम से करते हैं।[1] देवमातृक से अभिप्राय बादलों से होने वाली वर्षा (देवो मेघे) से है। प्राचीन भारतीय साहित्य एवं अभिलेख अन्नोत्पादन के प्रसंग में इन तीनों प्रकार के स्रोतों का उल्लेख करते हैं। ऋग्वेद में जल को जीवन का रक्षक कहा गया है और इसके स्रोतों का उल्लेख भी है। यहाँ यह कहा गया है कि जल की प्राप्ति आकाश से बादलों द्वारा होती है अथवा खनन यंत्र से जमीन को खोदकर (खनित्रिमा) या स्वतः उत्पन्न जल स्रोतों से (स्वयंजा)[2]।

मैकडानेल, कीथ, विल्सन आदि ने यहाँ प्रयुक्त खनित्रमा शब्द की व्याख्या मनुष्यकृत नालियां करते हैं और इसे सिंचाई का प्रमाण मानते हैं।[3] वैदिक इंडेक्स के लेखकों ने ऋग्वेद की एक अन्य ऋचा में प्रयुक्त सूर्मा, सुषिरा[4] शब्द–बन्ध को भी सिंचाई का साक्ष्य माना है। उनके अनुसार इस काल में कुओं से पानी निकालकर सिंचाई के लिए चौड़ी (सूर्मी) नालियों (सुषिरा) के माध्यम से ले जाया जाता था।[5] इसी प्रकार का मत म्योर ने ऋग्वेद में प्रयुक्त 'कुल्या' शब्द के आधार पर व्यक्त किया है।[6]

प्रो0 लल्लन जी गोपाल[7] ने ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं में कुंए से चक्र या पहिये के माध्यम से पानी निकालने और पौधों की सिंचाई करने का साक्ष्य प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने मत के समर्थन में जी0एस0 घुरिये द्वारा प्रस्तुत ऋग्वेद की ऋचा (X.101.6-7) का उल्लेख किया है।[8] घुरिये ने ऋग्वेद की एक अन्य ऋचा के आधार पर इस ग्रन्थ के रचना काल में रहट के अस्तित्व की कलपना की है। प्रो0 लल्लन जी गोपाल घुरिये के मत को स्वीकार करते हैं और कुएं से पानी निकालने की इस विधा की समता पर्सियन ह्वील या नोरिया से स्थापित करते हैं। गोपाल स्वयं ऋग्वेद की एक अन्य ऋचा[9] को उद्धृत करते हैं और इसके आधार पर इस काल में पौधों की सिंचाई का मत व्यक्त करते हैं।[10]

सिंचाई के विविध प्रकार :–

पूर्व मध्यकाल तक आते–आते कृषि अब देव मातृक नहीं रही। अधिकांश कृषक अपने साधन और जल की उपलब्धता के अनुसार किसी न किसी प्रकार के सिंचाई के साधनों का प्रयोग करने लगे। व्यापक स्तर पर इन साधनों के प्रयोग ने इस काल के विचारकों के चिन्तन को भी प्रभावित किया। नारद के अनुसार बिना जल के अन्नोत्पादन सम्भव नहीं होता, किन्तु अत्यधिक जल खेती के लिए उतना ही हानिकारक होता है। जितना जल का अभाव।[11] वृहस्पति ने कहा है कि केवल ऐसे कृषक को ही अच्छी उपज मिल सकती है, जिसके खेत की उर्वरा शक्ति उत्तम कोटि की हो और जहां सिंचाई सम्भव हो।[12] वास्तव में खेती के लिए सिंचाई को अपरिहार्य मान लिया गया। याज्ञवल्क्य एवं नारद[13] ने यह व्यवस्था दी है कि यदि सिंचाई के लिए कोई कृषक दूसरे की भूमि में कुंआ, सेतु आदि बनवा रहा हो तो भूमि के स्वामी को मना नही करना चाहिए क्योंकि इससे नुकसान कम होता है और लाभ या अन्नोत्पादन अधिक होता है। सिंचाई के लिए निर्मित सेतु दो प्रकार के होते हैं। प्रथम खेय जो जमीन खोदकर (कुआं, तालाब आदि) बनाया है और द्वितीय बन्ध्य जो अनावश्यक जल को खेत में आने से रोकता है।[14]

कृषकों द्वारा सिंचाई के लिए विभिन्न प्रकार के तरीके अपनाये जाते थे। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में सिंचाई में प्रयुक्त होने वाली विधियों का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने सिंचाई की प्रथम विधि को हस्तप्रावर्तिम कहा है। अर्थात् अपने हाथ से पानी निकालकर खेतों की सिंचाई करना। अर्थशास्त्र के टीकाकारों के अनुसार घड़े में आदि में जल लेकर अपने हाथों द्वारा की जाने

वाली सिंचाई की विधि को हस्त प्रावर्तिम कहा गया है।[15] कांग्ले ने इसी आधार पर इसका अर्थ हाथ से पानी निकालकर घड़े में खेतों तक ले जाना किया है।[15] किन्तु यह सम्भव प्रतीत नहीं होता कि किसी खेत की सिंचाई हाथ से घड़े में पानी ले जाकर की जा सके। घड़े में पानी ले जाकर किसी बाग–बगीचे में लगाये गये छोटे और नव संरोपित पौधों की सिंचाई की जा सकती है, खेतों की नहीं। वास्तव में इस शब्द बंध से अभिप्राय उस विधा से है जिसे आज की भाशा में बोखला[17] या किसी अन्य क्षेत्रीय नाम (दौरा) से जाना जाता है। इसमें बांस के बनाये गये एक बड़े टोकरे में टिसे पनिहा (पानी निकालने का पात्र) कहा जाता है, दो तरफ रस्सी बांध देते हैं और जलाशय के दोनों तरफ खड़े एक–एक व्यक्ति रस्सी से बंधे टोकरे के माध्यम से पानी निकालकर ऊपर बनी हुयी नाली में फेंकते हैं और यह पानी नाली के माध्यम से खेतों तक पहुंचाया जाता है इस विधा में हाथों के माध्यम से ही पानी निकालने का काम होता है इसलिए इसे हस्तप्रावर्तिम कहा गया है।

सिंचाई की दूसरी विधि को कौटिल्य ने स्कन्ध प्रावर्तिम कहा है जिसमें स्कन्ध या कन्धे से पानी ले जाकर खेतों की सिंचाई की जाती है। कन्धे से अभिप्राय बैल के कन्धे से है।[18] सम्भवतः इसका आशय सिंचाई की उस विधा से है जिसे आज पुरहट या मोट कहते हैं। कुओं से पानी निकालने के लिए चमड़े के बहुत बड़े पात्र या थैला का जिसे मोंट भी कहा जाता है, प्रयोग किया जाता है। चमड़े का यह थैला एक मोटी रस्सी या डोर से बंधा रहता है। कुओं पर लकड़ी के खम्भे पर बनी हुयी पहिया या गड़ारी के माध्यम से इस डोर का दूसरा सिरा दो बैलों के कन्धों पर लगे हुये जुवे से बंधा रहता है। कुएं के जल से भरे हुए चमड़े के थैला को बैल बार–बार खीचते हैं। इस प्रक्रिया में बैलों को ढाल जमीन पर उतरना और चढ़ना पड़ता है। जिससे भरा हुआ पानी का थैला ऊपर आ जाता है। कुएं से लगी हुयी नाली के माध्यम से यह पानी खेतों तक जाता है। इस विधा में मुख्य भूमिका बैलों की होती है। इसलिए इसे स्कन्ध प्रावर्तिम कहा गया है।

पुरहट सिंचाई की सर्वाधिक प्रचलित विधा है। आधुनिक युग में जहाँ बिजली उपलब्ध नहीं है और ट्यूबेल से सिंचाई संभव नहीं हो पाती है पुरहट से खेतों में जल पहुंचाया जाता है। मध्यकालीन भारत में भी पुरहट के माध्यम से कृषि की जाती थी। प्रो0 लल्लन जी गोपाल ने बाबरनामा के आधार पर यह कहा है कि बाबर सिंचाई की इस व्यवस्था से अवगत था।[19] अर्थशास्त्र

की इस दूसरी विधा का जिसे स्कन्ध प्रवर्तिम कहा गया है। प्रो0 लल्लन जी गोपाल[20] ने भी आधुनिक युग के पुरहट से तादात्म्य स्थापित किया है।

अर्थशास्त्र में सिंचाई की तीसरी विधा को स्रोतोयन्त्रप्रावर्तिम कहा गया है। अर्थशास्त्र के टीकाकारों के अनुसार प्रणालिका अथवा कुल्या के पानी को किसी यन्त्र के माध्यम से उठाकर खेतों की सिंचाई करने की विधा को स्रोतों यंत्र प्रावर्तिम कहा जाता था।[21] इस विधा के नामकरण से यह प्रतीत होता है कि जो स्रोत प्राकृतिक रूप से नदियों से निकल जाते हैं और आज की भाषा में जिसे सोता कहा जाता है उनसे सिंचाई की जाती थी। नदी से निकले हुये ऐसे सोतों के दोनों किनारों पर स्थित खेतों की सिंचाई इनके माध्यम से की जाती रही होगी। किन्तु इन स्रोतों में पानी का स्तर नीचे रहता होगा जिसे ऊपर उठाने के लिए किसी प्रकार के यंत्र का प्रयोग किया जाता था।

चौथी और अन्तिम विधा नदी सरस्तटाककूपोद्घाटम् कही गयी है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि इस विधा के अन्तर्गत नदी, जलाशय (ताल इत्यादि), तालाब या कुओं के पानी को ऊपर उठाकर खेतों तक ले जाया जाता था। 'उद्घाटम' शब्द से आशय उस यंत्र से है जिसके माध्यम से नदी, तड़ाग, कुओं आदि का पानी ऊपर निकालकर नाली के जरिये खेतों में पहुंचाया जाता था। अर्थशास्त्र के टीकाकारों ने इस यंत्र को अरघट्ट कहा है।[22]

अरघट्ट सिंचाई की एक व्यापक विधि रही है। इसे आधुनिक युग में रहट के नाम से जाना जाता है। कुआं या गहरे जलाशय से 'भर' के माध्यम से पानी को ऊपर उठाया जाता था। एक पहिया के ऊपरी सतह पर मिट्टी या लोहे के घड़ों की पंक्तियाँ इस प्रकार एक दूसरे से सम्बद्ध होती हैं कि पहिया के घूमने पर ये घड़े कुएं के पानी में जाते रहते हैं और घूमती हुई पहिये पर ऊपर आते रहते हैं। ऊपर आने के साथ ही इनका पानी नाली में स्वतः गिरता रहता है और नाली के माध्यम से खेतों तक जाता है। सिंचाई की इस विधा में अर तथा घड़े की भूमिका प्रमुख होती है, इसलिए इसे अरघट्ट कहा गया है।[23] सिंचाई के लिए अरघट्ट का प्रयोग भारत में कब प्रारम्भ हुआ, यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हो पाता। प्रो0 लल्लन जी गोपाल ने अपने लेख में इस प्रश्न पर विस्तार से विचार किया है।[24] विभिन्न विद्वानों के मतों की समीक्षा एवं प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में अरघट्ट से सम्बन्धित संदर्भों पर विचार करने के पश्चात गोपाल अरघट्ट के माध्यम से सिंचाई का

काल चौथी सदी या इससे कुछ पहले मानते हैं।[25] इरफान हबीब इसका काल छठी–सातवीं सदी ई0 स्वीकार करते हैं।[26]

सिंचाई के लिए दाँतदार पहिए के प्रयोग का काल विवादास्पद हो सकता है। किन्तु इतना निश्चित है कि तीसरी चौथी सदी ई0पू0 से ही, जबकि मौर्यवंशीय शासन का आरम्भ हुआ किसी न किसी प्रकार के यंत्र के माध्यम से खेतों की सिंचाई करने की प्रक्रिया से भारतीय कृषक अवगत हो चुका था। अरघट्ट का सफल संचालन पक्के कुएं में ही सम्भव था। एतदर्थ पक्की ईंटों का सन्दर्भ विचारणीय है।

इन सिंचाई के साधनों से कृषि के क्षेत्र में तीन प्रकार के परिणाम स्पष्ट दिखाई देने लगे। प्रथम इन संसाधनों के प्रयोग से अन्नोत्पादन में प्रभूत वृद्धि हुयी एवं द्वितीय, इन संसाधनों के कारण उन क्षेत्रों में कृषि कार्य आरम्भ हुआ जो अब तक अनुत्पादक या उपेक्षित थे। तृतीय, अन्नोत्पादन अब मात्र उपभोग के लिए ही नहीं किया जाता था, अपितु अनेक उत्पाद, जैसे चावल, कपास, गुड़, तेल आदि ने पण्य का रूप ग्रहण कर लिया। सिंचाई से होने वाले लाभ ने शासक, सामंत एवं साधारण कृषकों को भी जल–संसाधनों के निर्माण के लिए प्रेरित किया। साहित्यिक एवं अभिलेखिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि उत्तर एवं दक्षिण भारत में तड़ाग, जलाशय, कुआं आदि के निर्माण पर शासन ने आय का बड़ा भाग व्यय किया।

सन्दर्भ :

1. अमरकोष, भूमि वर्ग, 2.12
2. ऋग्वेद, 7.49.2, उद्धृत–प्रो0 जयमाल राय की कृति 'प्राचीन भारत में कृषि'
3. वैदिक इंडेक्स जिल्द 1, पृ0 214, विल्सन के मत के लिए दृष्टव्य उनके द्वारा प्रस्तुत ऋचा का अनुवाद एवं उसकी व्याख्या, ऋग्वेद संहिता, जिल्द 4, पृ0 333
4. ऋग्वेद, 8.69.12, उद्धृत– प्रो0 जयमल राय की कृति 'प्राचीन भारत में कृषि'
5. वैदिक इंडेक्स, जिल्द 1, पृ0 40
6. वैदिक इंडेक्स, जिल्द 1, पृ0 173
7. प्रो0 लल्लन जी गोपाल, आस्पेक्ट्स ऑफ हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन एन्श्येण्ट इण्डिया, पृ0 152–53
8. जी0एस0 घुरिये, उद्धृत– प्रो0 लल्लन जी गोपाल, आस्पेक्ट्स ऑफ हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन एन्श्येण्ट इण्डिया, पृ0 152–153
9. ऋग्वेद, 102.11, उद्धृत– प्रो0 जयमलराय की कृति 'प्राचीन भारत में कृषि'।
10. ऋग्वेद, 155, उद्धृत– प्रो0 जयमल राय, 'प्राचीन भारत में कृषि'
11. नारद, XI. 19

12. वृहस्पति, XIV. 23
13- नारद, XI.17
14. नारद, XI.18
15. श्रीमूला।
16. मनु0 2.24.18
17. ए0एन0 खेर, अग्रेरियन एण्ड फिस्कल इकानमी इन द मौर्यन एण्ड पोस्ट मौर्यन एज, पृ0 176
18. श्री मूला।
19. प्रो0 लल्लन जी गोपाल, अस्पेक्ट्स ऑफ हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन एन्श्येन्ट इण्डिया, पृ0 136
20. प्रो0 लल्लन जी गोपाल, अस्पेक्ट्स ऑफ हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन एन्श्येन्ट इण्डिया, पृ0 155
21. श्रीमूला।
22. श्रीमूला।
23. इरफान हबीब के दो लाख (1) प्रोसिडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस (वाराणसी, 1969) में प्रकाशित ''टेक्नॉलिजी एण्ड सोसायटी इन द थर्टीन्थ एण्ड फोर्टिन्थ सेंचुरीज'', (2) स्टडीज इन हिस्ट्री (ii) (i) 1989 में प्रकाशित ''चेंजेज इन टेक्नालिजी।''
24. प्रो0 लल्लन जी गोपाल, आस्पेक्ट्स ऑफ हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन एन्श्येंण्ट इंडिया, अरघट्ट द पार्सियन ह्वील, पृ0 114–166
25. प्रो0 लल्लन जी गोपाल, आस्पेक्ट्स ऑफ हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन एन्श्येन्ट इंडिया, पृ0 165
26. इरफान हबीब, अध्यक्षीय भाषण, इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, तैतालीसवॉ सेशन, कुरूक्षेत्र, 1982, पृ0 45, पाद टिप्पणी 157।